THE TIMES OF INDIA

Date:10-02-22

Is Wearing Hijab Mandated By Religion?

A scholar of Islam argues that the Quran does not stipulate this form of dress

Zeenat Shaukat Ali, [The writer is Director-General, Wisdom Foundation]

Heated debate surrounding the wearing of hijab in educational institutions in Karnataka has spread across the ideological spectrum and several dimensions – from preserving culture to making a political statement, from the roles of religion and national identity to gender equality. I have also been pondering several questions regarding the protests that have now spread to several colleges in the state, with many girls protesting in hijabs and many boys protesting in saffron shawls.

Are we seeing India's continuing slide into minority suppression in the name of uniformity? Or does a battle need to be at all fought on the hijab issue where young, impressionable women are hostages to the dictation of clerics on the one side and pawns to facilitate male patriarchy on the other? Especially when an integral part of their growth, their educational instruction, is at stake.

Again, on the one hand, in a liberal democracy, constitutionally, can moral policing and vigilantism enforce the choice of a woman's attire? But on the other hand, is the male religious identity by way of the Sikh turban, Muslim skull cap, Hindu tilak, or the Christian crucifix, to be brought under similar scrutiny? If there is no ban on male-oriented cultural/religious forms of dress in India's educational institutions or government offices, why are women the only ones bearing the brunt?

Was the veil invented by Islam?

Significantly, veiling did not originate with the advent of Islam. Elite women in ancient Mesopotamia and in the Byzantine, Greek and Persian empires wore the veil as a sign of respectability and high status. In ancient Mesopotamia, Assyria had explicit sumptuary laws detailing which women must veil and which women must not. Hence, long before the advent of Islam, veiling and seclusion appear to have existed in the Hellenistic-Byzantine area and among the Sassanians of Persia.

The words burqa, abaya, niqaab etc are unfamiliar to the Quran. Also, in the Quran, the word hijab is not equivalent to 'clothing'. The word hijab, or a derivative, appears seven times in the Quran and it has been translated by lexicographers as barrier, partition, screen, curtain. So the word has several metaphorical dimensions, none of which concern women's clothing. It has been equated with 'headscarf' speciously.

How does the Quran enjoin "modesty" upon women?

Indubitably the Quran advocates decency and modesty in clothing for both genders: "Say to the believing men that they should lower their gaze and guard their modesty that will make for greater purity for them"; "And say to believing women that they should lower their gaze and guard their modesty. "

While modesty and decency of dress was the standard, there was no prescribed dress form mandated by the religion. Al-Fakhr al-Razi stated that what should be covered is left to the prevailing custom, while al-Zamakshari left it to the custom and

nature. Classical as well as modern scholars submit that verses relating to dress are not absolute fard al ayn (individual obligation) or fard al kifayah (collective obligation) since there is no textual stipulation (nass) which makes it obligatory (wajib).

Prophet Muhammad recommended modesty and decency in appearance and dress. But to suppose that his recommendations enjoined a cloistered uniform for women in the present, is wholly opposed to the spirit of his reforms.

Have Muslim-majority countries banned hijab?

Unfortunately Muslim scholarship has been appallingly negligent in setting the record straight in matters relating to hijab and gender. Still, the garment has acquired different legal and cultural status in countries across the world. Kosovo (since 2009), Azerbaijan (since 2010), Tunisia (since 1981, partially lifted in 2011) and Turkey (gradually lifted) are among the Muslim-majority countries which have banned the hijab in public schools and universities or government buildings, while Syria and Egypt banned face veils in universities from July 2010 and 2015 respectively.

On the other hand, hijab/burqa is mandatory by law in Iran, Afghanistan and the Indonesian province of Aceh.

In Indonesia, Malaysia, Morocco, Bruni, the Maldives and Somalia hijab is not mandatory. Instead women use the customary dress they call the jibab.

Several countries have given hijab a cultural status. Some have attempted banning the wearing of hijab in public facilities like educational institutes, government buildings, military and some other public gatherings for security reasons.

In India, earlier court rulings have thrown up conflicting answers, and with the present Karnataka case the legal rules concerning the dress code for educational institutions are once again before the court. Bearing in mind India's democratic norms, we now await the judgment of the Karnataka high court.

दैनिक भास्कर

Date:10-02-22

ठीक नहीं हैं वोटरों को प्रलोभन देने वाले वादे

संपादकीय

लोक प्रतिनिधित्व कानून की धारा 123 के तहत चुनाव के दौरान प्रत्याशी या उसके प्रतिनिधि द्वारा वोटरों को प्रलोभन देना गैर-कानूनी है लेकिन अगर यही काम उसकी राजनीतिक पार्टी करे तो वह जायज है। अमरीका में राजनीतिक दल भी ऐसे वादे तभी कर सकता है जब उनसे समुदाय या संस्था के लिए कोई सम्पदा निर्मित होती हो जैसे कॉलेज में गरीब बच्चों के लिए लैपटॉप। भारत में इस गलत परम्परा के कारण 2014 में चुनाव आयोग ने 1200 करोड़ रुपए जब्त किए, जबकि अगले चुनाव में यह राशि बढ़कर 1500 करोड़ हो गई। चुनाव आयोग ने दो दिन पहले पंजाब में उपहार देने की 38 प्रतिशत शिकायतें सही पाई थीं। लेकिन कानूनी तौर पर चुनावी घोषणा के नाम पर यूपी में दो बड़ी पार्टियों- भाजपा और सपा- ने अपने घोषणा पत्रों में वोटरों के लिए आसमान से तारे तोड़ लाने जैसे वादे किए हैं, बगैर यह बताए कि आसमान तक पहुंचने के लिए सीढ़ी कहां है। देश के इस सबसे बड़े सूबे में इस साल बढ़ने की जगह राजस्व कम होने जा रहा है जबकि सत्ताधारी दल ने कॉलेज जाने वाले 30 लाख छात्रों को दुपहिया वाहन, लैपटॉप और किसानों को फ्री बिजली से लेकर दर्जनों वादे किए हैं। इन पर सरकार का अतिरिक्त खर्च करीब 1.50 लाख करोड़ रुपए होगा, जबकि राज्य का पुनरीक्षित बजट घटकर 5 लाख करोड़ होने का अनुमान है। उधर समाजवादी पार्टी ने भी बगैर यह बताए कि पैसे कहां से आएंगे, लगभग इसी किस्म के वादे किए हैं। खतरा यह है कि ये वादे सरकारों और राजनीतिक वर्ग पर भरोसा तोड़ने वाले हैं। किसानों को लुभाने के लिए भी अनेक वादे किए गए हैं, लेकिन किसी ने भी उनकी मुख्य मांग- उपज पर एमएसपी की गारंटी- का वादा नहीं किया।

दैनिक जागरण

Date:10-02-22

हिजाब के लिए जिद

संपादकीय

यह देखना दयनीय है कि जब ईरान में महिलाएं बुर्के के खिलाफ संघर्ष कर रही हैं और अफगानिस्तान में तालिबान बुर्का न पहनने वाली स्त्रियों पर कोड़े बरसा रहे हैं, तब कर्नाटक में कुछ छात्राएं हिजाब पहनकर पढ़ाई करने पर आमादा हैं। राज्य के उडुपी जिले के एक सरकारी कालेज में इस विवाद ने तब तूल पकड़ा, जब इसी दिसंबर की शुरुआत में छह छात्राएं हिजाब पहनकर कक्षा में पहुंच गईं। इसके पहले वे कालेज परिसर में तो हिजाब पहनती थीं, लेकिन कक्षाओं में नहीं। आखिर अचानक ऐसा क्या हुआ कि वे अध्ययन कक्ष में हिजाब पहनकर जाने लगीं? इस सवाल की तह तक जाने की जरूरत इसलिए है, क्योंकि एक तो यह विवाद देश के दूसरे हिस्सों को भी अपनी चपेट में लेता दिख रहा और दूसरे, इसके पीछे संदिग्ध पृष्ठभूमि वाले कैंपस फ्रंट आफ इंडिया का हाथ दिख रहा है। यह पापुलर फ्रंट आफ इंडिया की छात्र शाखा है। माना जाता है कि यह प्रतिबंधित किए जा चुके कुख्यात संगठन सिमी का नया अवतार है। नि:संदेह हर किसी को अपनी पसंद के परिधान पहनने की आजादी है, लेकिन इसकी अपनी कुछ सीमाएं हैं। स्कूल-कालेज में विद्यार्थी मनचाहे कपड़े पहनकर नहीं जा सकते। इसी मनमानी को रोकने के लिए शिक्षा संस्थान ड्रेस कोड लागू करते हैं। इसका एक बड़ा कारण छात्र-छात्रओं में समानता का बोध कराना होता है।

दुर्भाग्यपूर्ण केवल यह नहीं कि जब दुनिया भर में लड़कियों-महिलाओं को पर्दे में रखने वाले परिधानों का करीब-करीब परित्याग किया जा चुका है और इसी क्रम में अपने देश में घूंघट का चलन खत्म होने को है, तब कर्नाटक में मुस्लिम छात्राएं हिजाब पहनने की जिद कर रही हैं। यह न केवल कूप-मंडूकता और एक किस्म की धर्मांधता है, बल्कि स्त्री स्वतंत्रता में बाधक उन कुरीतियों से खुद को जकड़े रखने की सनक भी, जिनका मकसद ही महिलाओं को दोयम दर्जे का साबित करना है। यह हैरानी की बात है कि कांग्रेस समेत कई दल स्कूलों में छात्रओं के हिजाब पहनने की मांग का समर्थन कर रहे हैं। इस क्रम में प्रियंका गांधी यहां तक कह गईं कि यह महिला का अधिकार है कि वह चाहे हिजाब पहने, चाहे बिकिनी, चाहे घूंघट.। क्या वह स्कूलों में भी बिकिनी, घूंघट की वकालत कर रही हैं? इस पाखंड और शरारत पर भी गौर करें कि कई कथित प्रगतिशील मुस्लिम महिलाएं, जो खुद हिजाब नहीं पहनतीं, वे उसके पक्ष में अभियान छेड़े हुए हैं।

Date:10-02-22

राष्ट्रभाव के खिलाफ खड़ी होती कांग्रेस

विकास सारस्वत, (लेखक इंडिक अकादमी के सदस्य एवं वरिष्ठ स्तंभकार हैं)

लंबे समय तक हिंदू और हिंदुत्व के बीच अनावश्यक, अनर्गल भेद खड़ा करने के बाद कांग्रेस नेता राहुल गांधी ने अब भारतीयता के अभिप्राय पर आपत्तिजनक बयान दिया। उन्होंने संसद में यह कहकर चौंका दिया कि भारत राष्ट्र नहीं, बल्कि राज्यों का समूह है। जिस प्रकार हिंदुत्व को हिंदू धर्म से अलग दिखाने का प्रयास दुर्भावना से प्रेरित था, उसी प्रकार भारत की संवैधानिक अवधारणा का अनर्थ राहुल के दुराग्रह का प्रदर्शन था। प्रधानमंत्री मोदी ने उनके बयान की गंभीरता को समझते हुए राष्ट्रपति के अभिभाषण पर अपने संबोधन का काफी समय इसका जवाब देने के लिए दिया। अपने बयान द्वारा राहुल ने यह जताने का प्रयास किया कि राज्यों की दया और स्वेच्छा से भारत का अस्तित्व मात्र एक देश के रूप में है और भारत राष्ट्र तो कतई नहीं है। भारत की यह व्याख्या सांस्कृतिक और संवैधानिक रूप से तो गलत है ही, यह कांग्रेस के उन मूल्यों का उपहास भी है, जिनकी प्रेरणा से पार्टी ने भारत को समग्र राष्ट्र मानकर स्वतंत्रता की लड़ाई लड़ी थी।

बंकिमचंद्र के राष्ट्रवादी घोष 'वंदे मातरम' को अपना क्रांति मंत्र बनाने वाली पार्टी, जिसका औपचारिक नाम ही भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस है, यदि ऐसे नेता का नेतृत्व पाती है, जो भारत की राष्ट्रीय अवधारणा को नकार दे तो इससे पता चलता है कि पार्टी न सिर्फ अपना मूल चरित्र खो बैठी है, बल्कि उन मूल्यों के विरोध में खड़ी हो गई है, जिन्हें लेकर उसका सृजन हुआ था। यहां राष्ट्र और देश के बीच का भेद समझने के लिए यह जानना आवश्यक है कि राहुल और उन्हीं की

तरह के अन्य लोग जब भारत को राष्ट्र मानने से इन्कार करते हैं तो उनकी मंशा क्या होती है? जहां देश मात्र भौगोलिक सीमाओं से चिन्हित और संवैधानिक अधिकार से चलने वाली राजनीतिक इकाई है, वहीं राष्ट्र वह चेतना है जो साझा इतिहास, समान संस्कृति एवं सभ्यता के गौरव को आधार बनाकर उस राजनीतिक इकाई का सहज और स्वाभाविक एकीकरण करती है। यदि देश शरीर है तो राष्ट्र उसकी आत्मा है। राष्ट्रीय चेतना के अभाव में देशों की सीमाएं चलायमन और अस्तित्व संदिग्ध रहता है। वहीं राष्ट्रभाव, राष्ट्र-राज्य यानी नेशन स्टेट को उसकी विशिष्टता, स्थायित्व, दीर्घता, सांस्कृतिक शोभा, सामाजिक समरसता और राजनीतिक एकता प्रदान करने का ठोस आधार देता है।

संविधान के जिस अनुच्छेद एक का उल्लेख कर राहुल ने भारत को राष्ट्र नहीं, बल्कि महज राज्यों का संघ बताया, वह संविधान की मूल भावना के सर्वथा विपरीत निकाला गया अर्थ है। अनुच्छेद एक में 'इंडिया दैट इज भारत' में भारत स्पष्ट रूप से एक पुरातन, सांस्कृतिक राष्ट्र इंगित है। जहां तक बात 'यूनियन आफ स्टेट्स' यानी राज्यों का संघ होने की है तो यह शब्दावली राष्ट्र के विरोध में नहीं, बल्कि उसके शासकीय ढांचे को उद्धृत करने के लिए की गई है। राहुल यदि यूनियन आफ स्टेट्स का अर्थ ढीले-ढाले, स्वायत्त राज्यों के संघ से समझते हैं तो संविधान निर्माता यूनियन की जगह फेडरेशन शब्द का उपयोग करते। यूनियन बनाम फेडरेशन की चर्चा संविधान सभा में हुई थी और डा. भीमराव आंबेडकर ने दो कारणों से भारत को फेडरेशन मानने से इन्कार किया था। पहला तो यह कि भारतीय राष्ट्र स्वाधीन राज्यों के बीच हुए किसी समझौते का परिणाम नहीं और दूसरा इसलिए कि भारतीय कल्पना में राज्यों को देश से अलग होने की छूट नहीं। आंबेडकर ने स्पष्ट किया था कि फेडरेशन की जगह यूनियन शब्द के प्रयोग का कारण भारत की मजबूत संघीय कल्पना ही है।

एक मजबूत संघीय ढांचे के तहत राष्ट्रभाव को संवैधानिक रूप देने के लिए आंबेडकर ने संविधान सभा के कई सदस्यों की नाराजगी भी झेली। मौलाना हसरत मोहानी ने उन पर आरोप लगाया कि वह भारत को बिस्मार्क, कैसर विल्हेम और हिटलर के जर्मनी की तर्ज पर एकीकृत शासन व्यवस्था के अधीन लाना चाहते हैं। इस्लामी राष्ट्र पाकिस्तान के निर्माण और गांधीजी के राष्ट्र विभाजन के प्रबल विरोध के बाद भारतीय राष्ट्रभाव को इस प्रकार लांछित करना बेहूदगी थी, परंतु किसी ने यह आशा नहीं की थी कि नेहरू-गांधी खानदान में भी कभी कोई केंद्रीकृत संघीय ढांचे का विरोध करेगा। हसरत मोहानी की तरह आज राहुल भी भारत को एक ऐसे ढीले- ढाले रूप में देखना चाहते हैं, जिसमें विघटन बड़ी बात न होकर सामान्य सी बात हो। अपने भाषण में तमिलनाडु का जिक्र राहुल की इसी विघटनकारी मंशा को जाहिर करता है। राहुल का प्रधानमंत्री से यह कहना कि आप तमिल लोगों पर राज नहीं कर सकते, उस अलगाववादी चगारी को हवा देने का प्रयास है, जो लंबे समय तक वहां कभी तेज तो कभी धीमे-धीमे सुलगती रही है। इस तमिल अलगाववाद ने कभी खुलकर अलग देश 'द्रविडनाडु' की मांग की तो कभी आर्य विरोध के नाम पर प्रच्छन्न रूप से क्षेत्रीय कट्टरता को बढ़ावा दिया। राहुल द्वारा तमिल अलगाव को हवा देने का यह पहला प्रयास नहीं। पहले भी वह केंद्र द्वारा तमिल संस्कृति को कुचलने का मनगढ़ंत आरोप लगा चुके हैं। कांग्रेस सीएए विरोध के बहाने मुसलमानों और किसान आंदोलन की आड़ में सिख भावनाओं को भड़का चुकी है। कांग्रेस पुलवामा हमले, सर्जिकल स्ट्राइक, एयर स्ट्राइक और चीन से गतिरोध पर दुश्मन देशों के सुर में सुर मिलाती देखी गई है। राहुल द्वारा भारत की राष्ट्र चेतना से इन्कार इसी क्रम में अलगाव को वैधता देने का प्रयास है।

अपने बयान और कृत्यों से राहुल आज उन वामपंथी अतिवादियों के खेमे में आ गए हैं, जो भारत को एक राष्ट्र न मानकर बलात जोड़े गए छोटे-छोटे कई राष्ट्रों का समूह मानते हैं। धुर वामपंथी कन्हैया कुमार को पार्टी में स्थान देना राहुल की विघटनकारी संवेदनाओं को प्रकट करता है। हिंदुत्व से राहुल की चिढ़ भी इसी कारण दिखती है, क्योंकि हिंदुत्व

भारतीय राष्ट्रबोध का मूलभूत आधार है। यह दिनोंदिन साफ होता जा रहा है कि सत्ता से दूर कुंठाग्रस्त राहुल की राजनीति भारतीय अक्षुण्णता के लिए खतरा बनती जा रही है। इस नाते प्रधानमंत्री का कांग्रेस को टुकड़े-टुकड़े गैंग का लीडर बताना राजनीतिक आरोप से बढ़कर राष्ट्र को इस घातक राजनीति के प्रति सचेत करने का प्रयास है।

जनसत्ता

Date:10-02-22

जड़ होती नौकरशाही

प्रेमपाल शर्मा

दुनिया में शायद ही कोई ऐसा देश होगा जो भारत जैसी नौकरशाही के विरोधाभास में जीता हो। एक तरफ नौकरशाही को हर तरफ से धिक्कार, प्रताड़ना और अपमान से गुजरना पड़ता है, तो दूसरी तरफ हर नौजवान उसमें शामिल होने का सपना भी देखता है। इसमें सरकारी स्कूल, विश्वविद्यालय से लेकर कोर्ट-कचहरी तक हर सरकारी संस्था शामिल है। कुछ दिन पहले पटना और इलाहाबाद में रेलवे भर्ती परीक्षा को लेकर नौजवान गुस्से में सड़क पर उतरे और सरकारी संपत्ति को भारी नुकसान पहुंचाया। वैसे उनकी बात कुछ हद तक सही भी है कि रेलवे की नौकरियों में भर्ती में देरी क्यों हो रही है? साथ ही, इन नौजवानों ने भर्ती की परीक्षा प्रणाली पर भी उंगली उठाई।

इन नौजवानों का दर्द जायज है। पिछले दो साल की कोरोना त्रासदी की मार सबसे ज्यादा गरीबों और बेरोजगारों पर पड़ी है। हिंदी क्षेत्र में तो और भी ज्यादा, क्योंकि यहां लोग छोटे-मोटे काम भी शुरू नहीं कर पा रहे हैं और न ही भविष्य में इसकी कोई उम्मीद दिखाई दे रही है। लेकिन कुछ दरारें इस विरोध में भी साफ नजर आती हैं। उन्होंने नौकरशाही को अकर्मण्य, उदासीन, भ्रष्ट न जाने क्या-क्या कहा है। जब कोई ऐसा आरोप लगता है तो नौकरशाही कोई शीर्ष पर बैठे एक व्यक्ति का नाम नहीं, बल्कि पूरा संस्थान होता है जिसमें कई स्तर के कर्मचारी-अधिकारी होते हैं। अगर देखा जाए तो यह आरोप हर स्तर पर लागू है। बड़े अफसरों की जिम्मेदारी निश्चित रूप से ज्यादा है। लेकिन रेलवे भर्ती बोर्ड की परीक्षा के तहत जिन पदों पर भर्ती की जाएगी, वे भी अपनी कामचोरी, लापरवाही, अकर्मण्यता के लिए उतनी ही बदनाम हैं। कौन नहीं जानता कि रेल प्रशासन में सबसे ज्यादा बिना टिकट यात्री, जहरखुरानी की घटनाएं, चोरी, लेटलतीफी, घाटे की रेल उत्तर भारत की है और विशेषकर उन इलाकों में जहां उपद्रव हुए हैं। आखिर यह कौनसा समाज है जो ऐसे नागरिक बना रहा है जो जब तंत्र से बाहर होते हैं तो उसे बर्बाद और तोड़ने के लिए तत्पर रहते हैं और अंदर पहुंच जाएं तो उसे हर हालत में बचाने के लिए। रेल प्रशासन की तरफ से भर्ती में देर भी हो रही है और कुछ चूके भी हुई हैं। इस विरोध-

प्रदर्शन से रेल प्रशासन की नींद टूटी और भी सुधार के लिए सिद्धांत रूप से वह तैयार हो गया है। कमेटी बन गई है और उम्मीद है कि ऐसे कदम उठाए जाएंगे जिससे भविष्य में भी ऐसी नौबत नहीं आए। लेकिन ऐसी घटनाओं की रोशनी में पूरे तंत्र पर पर निगाह डालने की भी जरूरत है। पैंतीस हजार पदों के लिए होने वाली यह भर्ती असम, तमिलनाडु, गुजरात, कश्मीर से लेकर उत्तर प्रदेश, बिहार सहित पूरे देश के नौजवानों के लिए थी। क्या कारण है कि उपद्रव सिर्फ इलाहाबाद और पटना में ही हुए? जो आंकड़े सामने आ रहे हैं, उसमें सबसे ज्यादा संख्या उत्तर प्रदेश और बिहार के बेरोजगारों की ही है।

कोरोना काल से पूरा देश प्रभावित हुआ। लेकिन दक्षिण के राज्य अपनी बेहतर शिक्षा व्यवस्था, हुनर, कार्य संस्कृति के बूते तेजी से पटरी पर आ रहे हैं, जबकि उत्तर प्रदेश, बिहार जैसे उत्तरी राज्यों में नौजवानों की टकटकी सिर्फ सरकारी नौकरियों की तरफ ही लगी हुई है। इलाहाबाद, लखनऊ, पटना, भागलपुर जैसे शहरों में एक-एक कमरे में दस-दस बच्चों का रहना, बहुत कम साधनों में प्रशिक्षण और विशेषकर अंग्रेजी सुधारने के लिए जान झोंकते क्या इन नौजवानों के लिए इतनी सरकारी नौकरियां बची हैं? क्या शिक्षा व्यवस्था पचास फीसद से ज्यादा निजी हाथों में नहीं पहुंच गई? क्या ऐसे ही कदम रेलवे में लगातार नहीं बढ़ रह रहे? पिछले पांच साल में ही नहीं, बल्कि बीस वर्षों से रेलवे के बहुत सारे कार्यकलाप सार्वजनिक-निजी भागीदारी (पीपीपी) माडल और दूसरे कई नामों से निजी हाथों की तरफ बढ़ रहे हैं, चाहे विश्राम गृहों का रखरखाव हो या स्टेशन का विकास या उत्पादन इकाइयों के बहुत सारे काम। पिछले दिनों तो लगभग सौ रेलवे मार्गों को भी निजी गाड़ियों को सौंपने की तैयारी हो चुकी है। इसके बावजूद उत्तर प्रदेश बिहार जैसे हिंदी राज्यों के स्कूल, विश्वविद्यालय या समाज में यह ज्ञान कब आएगा कि आप फर्जी सामान्य ज्ञान और अंग्रेजी की स्पेलिंग रटने के आधार पर सरकारी नौकरी की उम्मीद छोड़ना कब बंद करेंगे? खेती, उद्योग या दूसरे हुनर या श्रम आधारित काम करना क्यों नहीं सीखते?

गंभीर प्रश्न नौकरशाही में सुधार का भी है। किसी भी हालत में उसका अपराध कम नहीं है। भारतीय नौकरशाही दुनिया की सबसे भ्रष्ट और आरामतलब नौकरशाही मानी जाती है। और इसके लिए जिम्मेदार राजसत्ता भी कम नहीं है। हालांकि मौजूदा सरकार ने इस समस्या पर ध्यान दिया है और सुधार के लिए पारदर्शिता वाले कुछ अच्छे कदम लागू किए हैं, पर वे सब तकनीक के इस्तेमाल वाले ज्यादा हैं। याद कीजिए एक समय था जब रेल टिकट के लिए लंबी-लंबी कतारें होती थीं। बिजली के दफ्तर से लेकर टेलीफोन और पासपोर्ट कार्यालय तक में काम आसानी से नहीं हो पाते थे। पर इक्कीसवीं सदी की डिजिटल तकनीक की दुनिया ने नौकरशाही को सुधारने या उसके पर कतरने के लिए ज्यादा बेहतर काम किया है, बजाय हमारी सत्ता ने। सत्ताधीशों ने शायद ही कभी लालफीताशाही, भ्रष्टाचार, भाई-भतीजावाद के खिलाफ आवाज उठाई, बल्कि प्रकारांतर से उसे और प्रश्रय ही दिए जाते रहने की प्रवृत्ति बनी रही।

निश्चित रूप इक्कीसवीं सदी के भारत में बड़ा परिवर्तन नौकरशाही में सुधार से ही संभव होगा। इसे वक्त के साथ बदलना बेहद जरूरी है। पचास के दशक की कार्य संस्कृति से न तो भारतीय रेल चलाई जा सकती है, न कोई दूसरा संस्थान। यूरोप अमेरिका से लेकर सभी विकसित राष्ट्रों की नौकरशाही ने निजी क्षेत्र से सबक लेते हुए अपने को सुधारा है। हमारी नौकरशाही पर पिछले दिनों सुप्रीम कोर्ट ने भी बार-बार बहुत सख्ती से चोट की है। याद कीजिए भारत के मुख्य न्यायाधीश एनवी रमण ने वायु प्रदूषण को लेकर पिछले साल नवंबर में कहा था कि 'नौकरशाही में एक तरह की जड़ता विकसित हो गई है। वे फैसले नहीं लेना चाहते। कार कैसे रोकें? वाहन कैसे जब्त किया जाए? क्या यह सब कोर्ट करेगा।' ऐसी ही टिप्पणी उन्होंने उत्तर प्रदेश के एक कर्मचारी की बकाया राशि न देने के मामले में की थी। उन्होंने मुख्य

सचिव के लिए कहा था कि 'आप अपने ही कर्मचारी को उसके जायज बकाया धन से वंचित कर रहे हैं. आप को सख्त सजा दी जानी चाहिए।' सुप्रीम कोर्ट तो यहां तक कह चुका है कि 'इस देश को तो अब भगवान भी नहीं बचा सकता।'

सर्वोच्च अदालत की ऐसी गंभीर टिप्पणियों के आलोक में हमें सोचने की जरूरत है कि नौकरशाही इतनी जड़ क्यों होती जा रही है? रेलवे भर्ती की हालिया घटना का ही उदाहरण लें तो ये उम्मीदवार बड़े अफसरों से मिलने पटना गए थे, लेकिन उन्होंने कोई संतोषजनक उत्तर नहीं दिया। क्यों? क्या पारदर्शिता की कमी है? सही वक्त पर सही निर्णय में देरी क्यों? क्या साहस की कमी है? क्या तंत्र उनको धीरे-धीरे ऐसा अपाहिज और निष्क्रिय बना रहा है? लाख दावों के उलट पिछले दिनों इन सभी में बहुत तेजी से गिरावट आई है और इसका असर पूरे देश के लिए विनाशकारी होगा। राजनेताओं को भी यह समझने की जरूरत है कि यदि आपने नौकरशाही को अकर्मण्य और चापलूस बनाया तो दीर्घकाल में उसके अंजाम ऐसे ही होंगे, जो हाल में पटना स्टेशन पर देखने को मिले।

राष्ट्रीय सहारा

Date:10-02-22

'पसंद के चुनाव' की तात्पर्यता!

गुरु प्रकाश

हाल में मैंने सोशल मीडिया पर डॉ. शशि थरूर द्वारा लिखित कर्नाटक गवर्नमेंट कॉलेज में लड़कियों के हिजाब पहन कर कॉलेज में प्रवेश पर लगी पाबंदी से संबंधित पोस्ट देखा जिसमें वे ऑक्सफोर्ड इंग्लिश की विशिष्टता लिए अपनी अनूठी शैली में हिजाब की तुलना हिंदुओं के माथे पर तिलक, सिख की पगड़ी और ईसाई द्वारा पहना किए क्रूस से करने को प्रवृत्त हुए हैं। उनका विचार था कि हिजाब पहनने वाली महिलाओं को कॉलेजों में प्रवेश करने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए तो किसी दूसरे धार्मिक चिह्नों को भी अनुमति नहीं होनी चाहिए। कहा कि हमें महिलाओं को तय करने देना चाहिए कि उन्हें हिजाब पहनना है या नहीं, और, सामान्य तौर पर मैं आगे स्क्रॉल करना जारी रखता और उनके धर्मनिरपेक्ष रुख की सराहना करता लेकिन इन दिनों मैं सतीश चंद्र लिखित इतिहास पाठ्यों के कारण मुझमें रोपित अपने स्वयं के ज्ञानात्मक पक्षपातों पर गंभीरता से जूझ रहा हूं।

एनसीईआरटी की किताबों, जो मुझे एक बच्चे के रूप में दी गई थीं, ने मुझमें धर्मनिरपेक्षता की एक विकृत अवधारणा आसवित की, जहां अच्छा और परिष्कृत व्यक्ति होने के नाता विशेष अचेतन तुष्टिकरण से जुड़ा था, बल्कि सभी प्रकार की मुस्लिम प्रथाओं के लिए औचित्य खोजना और इस मामले में अपरिहार्य का बचाव करना ध्येय था। हिजाब! जैसा कि हमें बताया गया था, शालीनता का परिधान होता है, या कहें कि संस्कृति विशिष्ट पोशाक है, जिसे कुछ महिलाएं अपनी पसंद से चुनती हैं, जिसकी तुलना पैंट-सूट छोड़ साड़ी पहनने के चुनाव से की जा सकती है। लेकिन क्या हिजाब वाकई इतनी सीधी-सादी हानिरहित पोशाक है? या हमारी छद्म धर्मनिरपेक्षता हमें दूध को दूध और पानी को पानी कहने से

रोकती है? हिजाब लैंगिक भेदभावपूर्ण प्रथाओं की परिणति है जो धार्मिक विश्वास से सिंचित होकर नैतिक स्वीकृति और सामाजिक आज्ञाकारिता प्राप्त करता है।

हिजाब शारीरिक रूप से महिलाओं को दुनिया के साथ स्वतंत्र रूप से बातचीत करने से नहीं रोकता है। लेकिन सच्चाई यह है कि हिजाब पहनने वाली महिला अपने को अलग महसूस करने हेतु धर्म द्वारा सामाजिक रूप से प्राणुकूलित होती हैं। डॉक्टर या वैज्ञानिक या व्यवसायी महिला बनना आसान नहीं है। हिजाब पहने हुए तो यह निर्विवाद रूप से और भी कठिन है। महिलाओं के लिए यह जितना कठिन होगा, शिक्षा या रोजगार के क्षेत्र में आपको उतनी ही कम महिलाएं मिलेंगी। हिजाब धर्म तंत्रानुसार बाध्यातित और मोर्चाबंद पुरुष-आधिपत्य का प्रतीक है, जिससे कुछ सरकारी कॉलेज लड़ने की कोशिश कर रहे थे। उनके प्रगतिशील इरादों को छद्म धर्मनिरपेक्षवादियों के शोर-शराबे ने दबा दिया है। जो महिलाएं हिजाब पहनकर कॉलेजों में जाने की गुहार लगा रही हैं, क्या वे वास्तव में अपनी पसंद की स्वतंत्रता का प्रयोग करने में सक्षम हैं, जैसा चितप्रथरूर ने करने की कोशिश की है। क्या वे अपने समाज के बुजुगरे को बता पातीं कि कॉलेज में हिजाब नहीं पहनना चाहतीं और तब यह एक गैर-मुद्दा होता। सच्चाई यह है कि उनके समाज के 'बुजुगरे' ने उन लड़कियों के कॉलेज जाने की चाहत पर, हिजाब पहनने की अपरक्राम्य अनिवार्यता निर्धारित की हुई है। महिलाएं कॉलेज के अधिकारियों से गुहार लगा रही हैं क्योंकि उनके पास उनके अपने ही सामाजिक-धार्मिक परिवेश के खिलाफ 'अपनी पसंद का चुनाव' करने का कोई विकल्प नहीं है।

अपने इन तकरे के साक्ष्य के रूप में मैं उन्हीं महिलाओं में से एक के तथ्यात्मक वक्तव्य का उल्लेख कर रहा हूं, जिसमें वह कह रही है, 'मैं अपने खुले बाल अपने भाई तक को नहीं दिखाती हूं तो गैर-मदरे को कैसे दिखाऊं।' क्या यह वक्तव्य नहीं दर्शाता कि उक्त महिला अपने 'बुजुगरे' द्वारा अपने ऊपर थोपी गई दीर्घकालिक धार्मिक बाध्यता को अपना प्रारब्ध स्वीकार चुकी है? क्या ऐसी मानसिकता लिए कोई महिला 'अपनी पसंद के चुनाव' की स्वतंत्रता के प्रयोग में सक्षम हो सकती है? तो! इसलिए! श्रीमान थरूर, कृपया हिजाब की 'पसंद के चुनाव' की तात्पर्यता के तर्क न दें! ऐसे किसी मसौदे का अस्तित्व ही नहीं है। धर्म शून्य में मौजूद नहीं होता। यह उस व्यवहार से गहराई से जुड़ा होता है, जिसे व्यक्ति प्रथा में लाता है, और यह उस समाज को गुण और चरित्र प्रदान करता है। राज्य को धर्म के दोषनिवृत्ति में दृढ़ रहना चाहिए और तुष्टीकरण की राजनीति के बहकावे में नहीं आना चाहिए। हमें एक ऐसे समाज को लक्षित रखना चाहिए जहां जेंडर-भेदभाव न्यूनतम हो और इस दृष्टिकोण से हिजाब को सिर्फ लैंगिक सौंदर्यशास्त्र में अंतर तक सीमित नहीं किया जा सकता। थरूर जैसे लोग, जो इस परिधान के अहितकारी स्वरूप को पहचानने से इनकार करते हैं, राष्ट्र और उस समाज के लिए बहुत बड़ा नुकसान करते हैं, जिसे हम बनाने की कोशिश कर रहे हैं, और इस हेतु मैं सिर्फ निवेदन कर सकता हूं। ज्ञानपूर्ण स्त्री और पुरु ष, चौंधियाने वाली अंग्रेजी में तर्क से नारी शक्ति की उन्नति हेतु की जा रहीं ऐतिहासिक कोशिशों को दिग्भ्रमित करने की कोशिशों को पहचानने, समझने और उन पर काबू पाने में सक्षम हैं।

Live हिन्दुस्तान .com

Date:10-02-22

हिजाब पर हंगामा

संपादकीय

बेवजह के विवादों का दावानल बन जाना इन दिनों नई बात नहीं है। ऐसा ही एक विवाद बुधवार को कर्नाटक उच्च न्यायालय के सामने था। राज्य के स्कूलों में मुस्लिम लड़कियों के हिजाब पहनने पर लगी पाबंदी का मुद्दा पिछले कुछ दिनों से देश की बहुत सारी ऊर्जा सोख रहा है। आंदोलन हो रहे हैं, नफरत फैल या फैलाई जा रही है, समाज में तनाव बढ़ रहा है और इसकी आग अब देश भर में फैलती हुई दिख रही है। देश के दूसरे हिस्सों से भी विरोध प्रदर्शन की खबरें आ रही हैं। इस बीच महिलाओं के अधिकार से लेकर समाज सुधार जैसे कई तर्क इससे जोड़ दिए गए हैं। इसलिए जब यह मामला उच्च न्यायालय के सामने आया, तो अदालत ने उन जटिलताओं को भी समझा, जो इससे जोड़ दी गई हैं और इसकी संवेदनशीलता को भी ध्यान में रखा। न्यायालय को यह एहसास था कि इस मामले में उसके फैसले के परिणाम बहुत दूरगामी हो सकते हैं। इसलिए मामले की सुनवाई कर रहे न्यायाधीश ने कहा कि इस मुद्दे की सुनवाई अदालत की बड़ी पीठ द्वारा की जानी चाहिए। राज्य के उडुपी जिले की लड़कियों ने अदालत में यह याचिका दायर की थी कि इस मामले में उन्हें अंतरिम राहत दी जाए, लेकिन न्यायाधीश ने अंतरिम राहत का फैसला भी बड़ी पीठ के ऊपर ही छोड़ दिया।

पिछले कुछ दिनों में यह विवाद इतना बड़ा हो गया है कि कर्नाटक सरकार को पूरे प्रदेश के स्कूल-कॉलेजों में छुट्टी घोषित करनी पड़ी है। हालांकि, इस बात की कोई गारंटी नहीं कि जब स्कूल-कॉलेज दोबारा खुलेंगे, तब तनाव फिर से न दिखाई दे। पूरे मामले को जिस तरह से सांप्रदायिक रंग दिया गया है और जिस तरह से इस बहाने एक धर्म के लोगों को दूसरे धर्म के खिलाफ खड़ा करने की कोशिश की जा रही है, उसमें बात सतही फैसलों से बनने वाली भी नहीं है। अब मामला यह नहीं है कि बात कहां से शुरू हुई थी, अब समस्या इसे लेकर शुरू हुई राजनीति है, जो समाज की पुरानी जटिलताओं के बारे में फैसला सड़कों पर कर लेना चाहती है।

हिजाब या परदे को लेकर हमारे देश में कई समाज सुधारकों ने बहुत से गंभीर प्रयास किए हैं, इसके लिए लंबी लड़ाइयां भी लड़ी गई हैं। इनमें बहुत सारी लड़ाइयों में सफलताएं भी मिली हैं, बहुसंख्यकों में भी और अल्पसंख्यकों में भी। सच तो यह है कि ऐसे ही प्रयासों के कारण लड़कियां और महिलाएं घर की दहलीज से बाहर निकली हैं और अब वे पढ़ाई ही नहीं कर रहीं, बल्कि जीवन के तकरीबन सभी क्षेत्रों में सक्रिय दिखाई देती हैं। यह भी कहा जाता है कि वे घर से निकली हैं, इसीलिए परदा भी खत्म हुआ और उसके तर्क भी। यह ठीक है कि परदा अभी भी कई रूपों में मौजूद है, अधिकतर परंपराओं के कारण है और कुछ जगहों पर कट्टरता के कारण भी। जैसे-जैसे लड़कियां घरों से निकलेंगी, ये आग्रह भी खत्म होंगे ही। वैसे भी, परदा प्रथा को खत्म करने का मामला समाज सुधार का मामला है, राजनीति का नहीं। अगर किसी को जबरदस्ती परदा थोपने की इजाजत नहीं दी जा सकती, तो किसी को जबरन परदा हटाने की इजाजत भी नहीं दी जा सकती। अच्छा होगा, हम लड़कियों को खूब पढ़ाएं और अपने परदे का फैसला उनके विवेक पर ही छोड़ दें। लेकिन अभी तो जो हो रहा है, वह उनमें से कुछ के पढ़ने के रास्ते ही बंद कर सकता है।